Conclusion

उपसंहार

परिवार एक ऐसी संस्था है जहाँ व्यक्ति का सर्वांगीण तथा समुचित विकास होता है। व्यक्ति, परिवार तथा समाज के मध्य एक ऐसा अभिन्न सम्बन्ध रहता है, जिसके कारण समस्त नैतिक तथा सामाजिक - मान्यताओं का स्वीकृत रूप निर्धारित किया जाता है। एक ओर समाज का रूप बिना परिवार के अधूरा कहा जा सकता है तो दूसरी ओर बिना समाज के परिवार या व्यक्ति का अस्तित्व भी कुछ नहीं रह जाता। अतः स्पष्ट है कि तीनों एक दूसरे के पूरक व सहयोगी हैं। इस कारण परिवार के - आचार- विचार व्यवहार एक सीमा तक समाज के अनुकूल रहते हैं। जब सामाजिक परिवर्तन या युग के अनुरूप परिवेश में परिवर्तन आता है तब पारि-वारिक जीवन में परिवर्तन आना भी अवश्यम्भावी हो जाता है।

पारिवारिक जीवन से सम्बद्ध विश्लेषण करके इस निष्कर्षात्मक बिन्दु को प्राप्त किया गया है कि साठोत्तर कहानियों में पारिवारिक जीवन का चित्रण अत्यन्त महत्वपूर्ण रहा है। इन कहानियों में युगानुरूप अनेक बदलते पारिवारिक जीवन के चित्र अंकित हुए हैं। यह अवश्य है कि कहीं-कहीं ये चित्रण युग के अनुरूप परिवार की अपेक्षा कहानियों के परिवार में कम चित्रित हुआ है तो कहीं इन परिवर्तनों को कल्पना का रूप देकर अति - शयोक्तिपूर्ण या अधिक प्रभावी रूप में चित्रित किया गया है। फिर भी कहा जा सकता है कि अधिकांशतः चित्रण की स्थिति युगानुरूप ही रही है। प्रेमचन्द युग से यह अभिव्यक्ति आकार लेने लगी थी कि परम्परागत परिवार के ढाँचे में सुधार होना चाहिए, किन्तु इसकी सशक्त चेतना का रूप सन् पचास के आसपास ही दृष्टिगोचर होता है।

यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि किसी वस्तु में परिवर्तन आने से पहले उसकी अनुपयोगिता तथा उसके प्रति उपेक्षित व्यवहार की चेतना मिलती है, तत्पश्चात उसमें परिवर्तन आता है। आलोच्य काल में अनेक सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक परिस्थितियाँ तथा मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण के कारण परंपरागत परिवारों के ढाँचे में परिवर्तन आना स्वाभाविक हो गया। ये स्थितियाँ विस्तृत रूप से पूर्ववर्ती अध्यायों में विवेचित की जा चुकी हैं। अतः सन् पचास के बाद परिवार के रूपों में परिवर्तन आने लगा। इस परिवर्तन की स्थिति सन् साठ के बाद और भी अधिक स्पष्ट हो चली। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि अनेक सामाजिक परिवर्तन तथा यथार्थवादी चेतना का रूप नयी कहानी में भी मिलने लगता है। उसका सशक्त या विकसित रूप ही साठोत्तर कहानियों में दृष्टिगोचर होता है।

साठोत्तर कहानियों के अनेक परिवर्तन भी पूर्ण अथवा आंशिक रूप में नयी कहानी में दृष्टिगोचर होने लगे थे। एक प्रकार से साठोत्तर कहानी, नयी कहानी का अगला कदम माना जा सकता है। इतना अवश्य है कि इन दिनों आन्दोलनों की एक परम्परा जैसी बन गयी थी। इसका एक स्पृहणीय परिणाम यह हुआ कि इस मनोवृत्ति ने अनेक कथाकारों को वस्तु और शिल्प की नयी जमीन खोजने तथा तोड़ने की ओर उन्मुख किया। अतः युग की चेतना के प्रति उनकी ईमानदारी तथा सजगता ने हिन्दी कहानी को नये सोपानों की ओर बढ़ने का सुअवसर भी प्रदान किया। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि निरन्तर समयानुकूल अनेक आंशिक परिवर्तनों के कारण साठोत्तर कहानी सन् पचास से पूर्व की कहानी से नितान्त भिन्न हो चुकी है। इन

दिनों की कहानियों में ऐसी नयी स्थिति उभरी है, जिसमें संयुक्त परिवार परम्परा तो नष्ट हुई ही है, एकाकी परिवार भी टूट रहे हैं। परिवार के स्वस्थ स्वरूप में जिस प्रेम, सौहार्द्र व सम्बंधों की रागात्मकता का - समावेश होता है वह अब समाप्त हो चुका है। फलत: व्यक्ति अब नितान्त अकेला, अजनबी तथा वैयक्तिक बनता जा रहा है। उसके हृदय में पुरानी पीढ़ी के प्रति विश्वास, सम्मान, आदर की भावना पूर्णतया: लुप्त हो चुकी है। इन स्थितियों के प्रकाशन के लिए लेखक ने मनोविज्ञान का सूक्ष्म और सांकेतिक उपयोग भी किया है जिससे वस्तु के साथ-साथ शिल्प के भी नये आयामों पर वह पहुँचा है।

यह यथास्थान स्पष्ट किया जा चुका है कि किन कारणों ने एक ही परिवार में नयी पीढ़ी और पुरानी पीढ़ी के बीच द्वन्द्व तथा संघर्ष से इतना विस्तृत अन्तराल बना दिया कि उनकी परस्पर संवादिता या सामंजस्य की स्थिति नगण्य सी हो गयी है। इतना ही नहीं नयी पीढ़ी का एक एकाकी परिवार भी अन्त:संघर्षों से यत्र-तत्र ग्रस्त दिखायी पड़ता है। इन सब स्थितियों के लिए अर्थ- व्यवस्था से अधिक वैयक्तिकता उत्तरदायी कही जा सकती है। यह नि:संदिग्ध रूप से कहा जा सकता है कि आलोच्यकालीन हिन्दी कहानियाँ आधारभूत कारणों के साथ-साथ इन सभी की सूक्ष्मातिसूक्ष्म अनुभूति तरंगों तथा विविध रूप-रंग-मयी जीवन- स्थितियों को पकड़ने में सफल हुई है। इनके यथासम्भव सर्वपक्षीय अनुशीलन में इसे दृष्टिगत कराने का प्रयास किया गया है। भारतीय जन-मानस में लगभग एक शताब्दी से निरंतर धीरे- धीरे प्रविष्ट होने वाला पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव तो गहराता रहा ही है, किन्तु यूरोपीय साहित्य भी इनकी विषय- वस्तु को

बहुत बड़ी सीमा तक प्रभावित करता है। जीवन तथा साहित्यिक प्रवृत्तियों का यह अन्तरावलम्बन शिक्षा के व्यापक प्रसार के कारण और भी बढ़ गया है। साठोत्तर कहानियों में भी इसके सशक्त और सर्वविश्रुत साक्ष्य देखे जा सकते हैं। वस्तुस्थिति तथा कहानियों में अंकित उसके रूप के दृष्टिकोण से विचार किया जाय तो एक ओर व्यक्ति वैयक्तिक चेतना को अपना कर स्वार्थ-वृत्ति से प्रेरित होता जा रहा है तो दूसरी ओर बढ़ती हुई आर्थिक - आवश्यकताओं ने पुरुष के साथ-साथ नारी को भी काम-काजी बनाने में सहयोग दिया है। एक ओर आर्थिक रूप से स्वतंत्र नारी आज आत्मगौरवान्वित होकर अपने अस्तित्व के प्रति अधिक जागरूक तथा वैयक्तिक बनती जा रही है तो दूसरी ओर उसके पारिवारिक सम्बंधों में अन्तर आ रहा है। इस वैयक्तिकता के आघात -प्रतिघातों ने समाज-जीवन में अपने जो अमिट चिन्ह छोड़े हैं वे साठोत्तरी कहानियों में प्रतिबिम्बित कहे जा सकते हैं। फिर भी समग्रतया मूल्यांकन के आधार पर यह कहना कठिन है कि इस कालखंड की कहानियों द्वारा अभिप्रेत पारिवारिक जीवन किस प्रकार का है ?

यह उल्लेखनीय है कि घर से बाहर नारी के कार्य करने से नर-नारी के बीच के सम्बंधों के कारण समाज तथा परिवार के जीवन में सर्वथा नवीन आयाम विकसित हो चुके हैं और उनके नये रूपों के विकास की संभावना को भी अस्वीकार नहीं किया जा सकता। कहीं रूपाकर्षण काम करता है तो ~~है~~ कहीं प्रभाव या अस्तित्व स्थापन की चेतना क्रियाशील होती है तो कहीं स्वार्थपूर्ति ही मूलभूत प्रेरणा बनने का कार्य करती है। स्वार्थपूर्ति की चेतना उसके नारीत्व के उपयोग और प्रयोग से भी नहीं चूकती, किन्तु कभी- कभी ये

सम्बंध केवल आधुनिकता के उत्साह के परिणाम भी कहे जा सकते हैं। यह आपा-धापी आज पारिवारिक जीवन की विच्छिन्नता के लिए उत्तरदायी है और इसके गर्हित तथा वांछनीय दोनों ही रूपों के सशक्त आकलन इन कहानियों में मिल जाते हैं। साथ ही यह भी उल्लेखनीय है कि जैसे- जैसे सामाजिक सम्बंधों में नर-नारी के संपर्क तथा व्यवहार एक फैशन का रूप धारण कर रहे हैं, उससे भी कहीं अधिक कहानियों में उसकी अभिव्यक्ति का भी एक फैशन दिखायी पड़ता है। जहाँ इस फैशन परस्ती का शिकार कहानी लेखक अधिक मात्रा में हो जाता है, वहाँ वह निश्चय ही जीवन की वस्तु-स्थिति से दूर भी जाता हुआ दिखायी पड़ता है।

आज के पारिवारिक जीवन को सर्वाधिक प्रभावित करने वाली प्रवृत्ति यौन- चेतना की है। इसके प्रभाव से व्यक्ति का विश्वास आज प्लेटोनिक प्रेम से हट कर काम विकार के संकुल तथा अनैतिक रूप में दृष्टिगोचर होता है, जिसमें प्रेम, विवाह आदि का अर्थ व्यक्ति अपनी धारणाओं के अनुसार मानता है। इनमें विवशता संशय प्रतिशोध, स्वार्थ,पर-पीड़न को भी स्थान मिला है। फलत: असफल होने पर व्यक्ति मनोवैज्ञानिक जटिलताओं से घिर कर मनस्तापी ग्रंथियों(न्यूरोसिस) का शिकार बन जाता है और समाज से सामंजस्य स्थापित नहीं कर पाता। इस प्रकार विवाह संस्था, पति-पत्नी के सम्बंध, सन्तान सम्बन्ध, परस्पर सहयोग तथा द्वन्द्व आदि परिवार के गठन व विघटन के उत्तरदायी भी बन गये हैं। नर-नारी के सम्बंधों के अनेक मनोवैज्ञानिक कारण, यौनाकर्षण, चेतन तथा अचेतन में स्थित आकांक्षाएँ तथा कुंठाएँ, उन्मुक्त काम तथा यौन सम्बंध ऐसे मनोवैज्ञानिक आधार हैं जिन्हें पारिवारिक जीवन से अलग नहीं किया जा

सकता । इन्हीं के परिणामस्वरूप व्यक्ति के आचार- व्यवहार तथा पारिवारिक जीवन के अनेक पक्षों में परिवर्तन आता है । यही परिवर्तन साठोत्तर कहानी में अत्यधिक मात्रा में दृष्टिगोचर हुए हैं ।

उपर्युक्त वस्तुस्थिति के आधार पर यह कहा जा सकता है कि इन्हीं समस्याओं से उलझी नारी इन कहानियों में कहीं विवाहित होकर भी पत्नीत्व व मातृत्व को तरसती है तो कहीं अविवाहित ही रह गयी है । परिणामस्वरूप पारिवारिक जीवन के सम्बंधों, आचरणों तथा व्यवहारों के नये आयाम विकसित हो चले हैं, जिनमें अनेक उन्मुक्त यौन सम्बंध तज्जन्य विकृतियाँ भी दृष्टिगोचर हो रही हैं । काम-अतृप्ति तथा तज्जन्य विकृतियाँ पारिवारिक जीवन में परस्पर अविश्वास तथा कालान्तर में द्वन्द्व का कारण बनती हैं । नर- नारी के सम्बंधों में वैषम्य तथा व्यस्त जीवन के कारण बच्चों की अपेक्षा भी होती दिखायी देती है । इस प्रकार माता- पिता व बालक के सम्बंधों में परिवर्तन आ गया है जो पारिवारिक जीवन के बदलते आयामों व सम्बंधों का एक अन्य पहलू कहा जा सकता है ।

उपर्युक्त स्थिति परिवार के बच्चों को अनेक रूपों से प्रभावित करती है। कभी पति-पत्नी के बीच तीसरे व्यक्ति और कहानियों में दिखाये गये चौथे व्यक्ति का प्रवेश भी उनमें परिस्थिति तथा उसकी मनोवैज्ञानिक स्थिति के अनुसार विद्रोह, निराशा, उपेक्षित मनोदशा, कुंठा और कभी असुरक्षा आदि की मनोवृत्तियों का सन्निवेश उन बच्चों में कहानियों के माध्यम से परिलक्षित कराया है । इसे स्वाभाविक कहा जा सकता है । शिल्प की दृष्टि

से ऐसी कहानियों की संवेदना मार्मिक बन जाती है, किन्तु ऐसे अनुत्तरदायी नर -नारी सम्बंधों का एक अवश्यम्भावी परिणाम भी है। सम्बंध-विच्छेद या तलाक इसका दूसरा पक्ष है जिसमें नारी सदा-सर्वदा समान क्षमता के साथ प्रतिरोध नहीं कर पाती। इसकी भीति उसे अन्याय सहन करने को विवश करती है और जब यह भीति विद्रोह या अन्याय की परिसीमा लाँघ जाती है तो वह वेश्या बनने की दिशाओं में प्रवृत्त होती है। इसका दूसरा रूप रखैल भी है। इन सबके लिए पुरुष और स्त्री दोनों ही भिन्न अनुपातों में उत्तरदायी कहे जा सकते हैं। परिवार का जीवन दोनों के बीच एडजेस्ट-मेन्ट या सामंजस्य पर आधारित है जिसके अभाव में उपर्युक्त परिणाम अवश्यम्भावी हैं। साठोत्तर कहानी इन विविध जीवन पक्षों को भी प्रकाश में लाती है, मानों वह प्रकारान्तर से दबे शब्दों में ही उन अवांछनीय स्थितियों को दिखाकर पारिवारिक जीवन के सामंजस्य को वाणी देती है। तलाक का तीसरा पक्ष बच्चों की असुरक्षा का भी कारण है। कहीं-कहीं पर इसके दुष्परिणाम का समाधान प्रस्तुत करके उसके लिए उत्तरदायी व्यक्ति के मन में टीस भी पैदा की गयी है। डॉ० महीपसिंह की 'काला बाप- गोरा बाप' कहानी इसका ज्वलन्त उदाहरण प्रस्तुत करती है।

प्रस्तुत अनुशीलन में उभारे गये उपरिनिर्दिष्ट समस्त निष्कर्ष बिंदुओं को दृष्टिगत करते हुए यदि हम पारिवारिक जीवन दृष्टि और जीवन मूल्यों पर विचार करें तो सर्वाधिक महत्व का जीवन- मूल्य जो आज प्रतिष्ठित हो पाया है वह नर-नारी के समान महत्व की मान्यता का है। इसके लिए आधुनिक बौद्धिकता, शिक्षा तथा नारी की प्रगतिशील चेतना सभी को

कारणीभूत कहा जा सकता है । अन्य पारिवारिक जीवन-मूल्यों की इतनी स्पष्ट स्थिति नहीं दिखायी दे पड़ती । संयुक्त परिवार के जीवन मूल्य टूट चुके हैं । किन्तु उसके स्थान पर एकाकी परिवार के जीवन मूल्य भलीभाँति निर्मित नहीं हो पाये हैं । उनकी विकासशील अवस्था में ही यौन - चेतना की विकृतियों ने उन्हें तोड़ डाला है । साठोत्तर कहानी इस स्थिति को सर्वाधिक उजागर करती हुई दिखायी देती है । पारिवारिक जीवन के एक बहुत बड़े भाग में यह मूल्यहीनता हमें सहज ही विचारने के लिए विवश करती है कि पारिवारिक जीवन को क्या इससे स्थायित्व प्राप्त हो सकेगा ? सम्भव है कि भारतीय जीवन में कालान्तर में एक ऐसी स्थिति धीरे-धीरे आ जाए, जिसमें पारिवारिक जीवन के स्थायी अस्तित्व के सामने एक स्थायी प्रश्नवाचक चिन्ह स्तम्भ बन कर खड़ा हो जाए । आज की हिन्दी कहानी बारम्बार इस प्रश्न को उभारती जा रही है और कोई रचनात्मक समाधान प्रस्तुत करने में असमर्थ भी कही जा सकती है । अस्थायी पारिवारिक जीवन पाश्चात्य सभ्यता की एक उल्लेखनीय देन है । यह देन पूर्णतया भारतीय जीवन परम्परा को उखाड़ कर यहाँ भी प्रतिष्ठित हो जायगी यह कहना आज की सामाजिक परिस्थिति को देखते हुए कठिन है । किन्तु यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि पारिवारिक जीवन दृष्टि में भारतीय परम्परा और पाश्चात्य जीवन दृष्टि की संकरता अवश्य आ चुकी है । साठोत्तर कहानीकार कभी उन्मुक्त जीवन की चकाचौंध को पाठकों के सामने रखकर उन्मुक्त कामुकता के उत्तेजक चित्रों से उसे चौंकाता है, तो कभी जन-साधारण की संवेदना को जगाता है । सम्भव है कि इस प्रकार का निरूपण उसके पाश्चात्य सभ्यता के प्रति व्यामोह का परिणाम हो या नवीनता के आग्रह के उत्साह में पाश्चात्य साहित्य की प्रवृत्तियों को हिन्दी कहानी में लाने की सोद्देश्यता का परिणाम हो । किन्तु दूसरी स्थिति उसके दायित्व की परिचायक कही जायेगी ।

पाठक को प्रभावाक्रान्त करने की लेखकीय चेष्टा उसे लोकप्रिय बनाती है। इसका साक्ष्य कई कहानियाँ प्रस्तुत करती हैं। किन्तु, इसी तथ्य मान लेने पर हम साठोत्तर कहानियों की उपलब्धि को समुचित न्याय- भावना नहीं दे सकते। इसकी अन्य उल्लेखनीय उपलब्धियाँ हैं। इस युग के कहानीकार ने पाठक को अपनी जीवन- संवेदनाओं से प्रभावित करने के साथ अनुप्राणित भी किया है। पारिवारिक जीवन की अभिव्यक्ति के सन्दर्भ में विचार करें तो इसने यथार्थवादी धरातल पर स्थित होकर जीवन के इस महत्वपूर्ण पक्ष के ऐसे रहस्यों का उद्घाटन किया है और ऐसी अवसादमयी जीवन स्थितियों को वाणी दी है, जिसके आलोक में हम पारिवारिक जीवन की नयी सम्भावनाओं पर विचार कर सकते हैं। विचारोत्तेजक स्थितियों को बारम्बार उभारना इस युग के कहानीकार की तीसरी महत्वपूर्ण उपलब्धि है, क्योंकि इसके आधार पर चिन्तन का पथ प्रशस्त होता है। यह चिन्तन समाज को दिशा दृष्टि दे सकता है और साथ ही परवर्ती कहानियों की वस्तु और शिल्प के नये आयामों को प्रकाश में ला सकता है।

सन् १९७५ के बाद की अनेक कहानियों में प्रायः साठोत्तरी कहानी की सभी चेतनाएँ मिलती हैं, परन्तु राकेश वत्स ने इस कालखण्ड की कहानियों को सक्रिय कहानी नाम देने का प्रयास किया है। यह उल्लेखनीय है कि यह स्वर अभी सशक्त रूप नहीं ले सका है। राकेश वत्स ने इस सन्दर्भ में ‘मंच’ के दो अंकों में सक्रिय कहानी विशेषांक निकाल कर विभिन्न रचनाकारों के वक्तव्य एवं विमर्श जुटाने का प्रयास किया है। उनका कहना है कि **इस सक्रिय** ~~[illegible]~~ **कहानियों में** जिन्दगी के प्रति गहरी ललक है तथा मंच (७८) की लगभग सभी कहानियाँ इस तथ्य की पुष्टि कराने में सहायक है। रमेश बत्रा की ‘जंगली जगराफिया’, राकेश वत्स की ‘उसका हिस्सा’?

स्वदेश भारती की 'जुलूस', चित्रा मुद्गल की 'अतिक्रमण अन्त', सुरेन्द्र मनन की 'उर्फ लक्ष्मीनारायण', 'वीरेन्द्र मेंहदीरत्ता की 'नाभि कुंड' आदि कहानियों को उन्होंने अच्छी सक्रिय कहानियाँ माना है ।

सक्रिय कहानी के विषय में राकेश वत्स के विचार हैं कि- '---सक्रिय कहानी का सीधा और स्पष्ट मतलब है- आदमी की चेतनात्मक ऊर्जा और जीवन्तता की कहानी । उस सम्पूर्ण अहसास और बोध की कहानी जो आदमी की बेबसी, वैचारिक- निहत्थेपन और नपुंसकता से नजात दिलाकर, उसके स्वयं अपने अन्दर की कमजोरियों के खिलाफ और फिर बाहर के जन-आन्दोलन और बदलाव विरोधी काली शक्तियों के खिलाफ खड़ा होने के लिए तैयार करने की जिम्मेदारी अपने सिर लेती है । जो साहित्य को इस सार्थकता के प्रति समर्पित है कि साहित्य संकल्प और प्रयत्न के बीच की दरार को पाटने का एक जरिया है । विचार और व्यवहार के बीच का पुल है । यदि यह पुल जनता के बीच पहुँच कर उसे सचेत और सक्रिय करने की भूमिका नहीं निभाता तो उसका होना या न होना एक बराबर है ।'[१] उनका कहना है कि सक्रिय कहानी की सार्थकता जन जीवन को प्रभावित करने में ही है । यह भी सही है कि जन जीवन का अर्थ उत्पीड़ित लोगों का शोषित अथवा सर्वहारा वर्ग के लोगों का जीवन ही है । सक्रिय कहानी इस शक्ति को जगाने की बात कहती है ।

यह उल्लेखनीय है कि इन दिनों अनेक कहानियाँ सामाजिक कुरीतियों को ध्यान में रख कर टूटे मानव के अस्तित्व को उभारने के लिए लिखी गयी हैं। आज के जन-सामान्य का उपर्युक्त यथार्थ- बोध पूर्ववर्ती अध्यायों के विवेचन

से प्राप्त निष्कर्षों को देखते हुए किसी नये पदन्यास का द्योतक नहीं कहा जा सकता। सक्रिय कहानी की उपलब्धियों के विषय में राकेश वत्स ने जो दावे किये हैं वे सभी दावे सन् १९६० ई० से १९७५ ई० तक लिखी गयी हिन्दी कहानियों की विषय-वस्तु से बाहर के नहीं हैं। विरोधी शक्तियों एवं प्रवृत्तियों के खिलाफ बगावत इन कहानियों में शामिल जाती है। हाँ स्वयं अपने अन्दर की कमजोरियों और जन-मानस को खड़ा करने की जिम्मेदारी को अपने सिर लेने की प्रतिबद्धता अवश्य एक परवर्ती काल का अभियान कहा जा सकता है। किन्तु यह विचारणीय है कि क्या इस प्रतिबद्धता को आज के अधिकांश कहानीकार स्वीकार कर चुके हैं।

साठोत्तर काल में कुछ महिला कहानीकारों ने समाज सन्दर्भ के व्यापक परिवेश को अपनी कहानियों में चित्रित किया है और परिवारों की बदलती हुई मानसिकता को उसकी संश्लिष्ट और जटिल भूमिका में पकड़ने का प्रयत्न किया है। इनमें सिम्मी हर्षिता का नाम लिया जा सकता है। इनकी कहानियाँ मानवीय त्रासदी नियति और संकट की कहानियाँ हैं। जिन्हें व्यक्ति अपनी जिन्दगी में अनुभव करता आया है। इनके 'धाराशायी' (१९८०) कहानी संग्रह में इसी प्रकार की कहानियाँ हैं। 'विरोध' कहानी में निम्न वर्ग की लड़कियों पर समाज किस प्रकार अत्याचार करता है क्योंकि वे अशिक्षित हैं, कुछ कर नहीं सकती आदि समाज की बुराइयों को दिखाया है। 'मातमी धुन' कहानी में पुराने रीति-रिवाज व लेन-देन पर व्यंग्य है। एक ओर घर में मृत्यु हुई है तो दूसरी ओर बहू के घर वालों से अनेक वस्तुओं की अपेक्षा की जाती है। '----- यहाँ एक व्यक्ति तो डायरी और पेन हाथ में लिए इसी अफसोसिया चुंगी के हिसाब-किताब पर तैनात है, जैसा कि अक्सर शादियों पर होता है। किसने क्या किया(दिया) और क्या नहीं,

इसको बड़ी बारीकी से परीक्षा के परचे की तरह जाँचा जा रहा है और इसी देन के फीते से उसके मन की आतमगीभावना को नापा जा रहा है ।[2]

मिश्र 'दिशाहीन- में' (सूर्यबाला १९८१) कहानी संग्रह में आज के परिवेश में व्यक्ति त्रासदी, लाचारी, को उभारने का प्रयत्न किया है । 'पुल टूटते हुए', 'घटनाहीन', 'दशाहीन' इसी प्रकार की कहानियाँ हैं । इनमें व्यक्ति अर्थ-संकट और बढ़ती मंहगाई, दहेज तथा अन्य संकटों में इतना फँस जाता है कि कहीं पुत्र के लिए पिता दवाई न पाकर पार्क में बैठा रहता है और घर में कह देता है कि बाजार में मिली नहीं । तो कहीं पिता पुत्र को पढ़ाई के लिए पैसा नहीं दे पाता, परिवार टूटते हैं, सम्बंधों में बिखराव आता है । दिशाहीन कहानी इसी तथ्य को उभारती है'---मजबूर होकर लिखना पड़ रहा है । तुम्हारे बड़े भाई अपनी औरत समेत अलग हो गये हैं ।----- भाई अलग होते समय साफ- साफ कह गये हैं कि बहनों की शादी या तुम्हारी पढ़ाई से उनका कोई वास्ता नहीं है क्योंकि उसे अपने परिवार को देखना है । जिस दिन से भाई अलग हुए हैं तुम्हारी माँ सदमें में खाट पर पड़ी है । कभी लड़कियों की शादी को लेकर कभी तुम्हारी पढ़ाई को लेकर रात दिन रोती है ।[3] इन्हीं दिनों पारिवारिक चेतना से अभिभूत भी अनेक कहानियाँ मिली हैं । 'शब्दवेधी' (मृणाल पाण्डे, १९८०) 'ग्लेशियर से' (मृदुला गर्ग, १९८०), 'स्पीडब्रेकर' (कुसुम अंसल १९७८), 'जोड़ बाकी' (शशि प्रभा शास्त्री, १९८१), 'कितना कोटा सफर' (मंजुल भगत, १९७९), 'गलत पुरुषा' (मेहरुन्निसा परवेज), 'पटाक्षेप' (१९७८), 'मध्यान्तर' (१९७९), 'पराजय' (१९८१) मालती जोशी आदि कहानी संग्रह विशेष उल्लेखनीय हैं ।

उपरिनिर्दिष्ट सभी कहानियाँ प्राय: बदलते हुए पारिवारिक जीवन

को चित्रित करती है । `मध्यान्तर` कहानी संग्रह की `टूटने से जुड़ने तक` कहानी भी यही साक्ष्य उपस्थित करती है । इसमें मां- बाप साथ रहते हुए भी पुत्र के विवाह में सम्मिलित नहीं हो पाते । पुत्र प्रेम-विवाह करता है तथा उसी में प्रसन्न रहने को विवश होता है । मम्मी पुत्र व पति के मध्यस्थ व्यक्ति के रूप में उभरती है जो अन्त में एकाकी पति का साथ देती है । `अस्ताचल` कहानी में भी पारिवारिक जीवन के बीच नयी-पीढ़ी, पुरानी पीढ़ी का द्वन्द्व उभर कर आया है । एक ओर मम्मी अपने मन से पुत्र शिरीष की प्रेमिका के सम्बंध को लेकर खिन्न होती है तो दूसरी ओर यह सोचने पर विवश होती है`---- बहुत देर तक मैं उस निरीह लड़की को कोस नहीं सकी---- मैंने इस सत्य को स्वीकार किया कि यह दरवाजा तो बंद होने को ही था । चाहे इसका कारण रेणु हो या कोई और । चाहे मेरे द्वारा ठोंक बजा कर लायी हुई वहू ही क्यों न हो---- मेरे और शिरीष के बीच में यह दरवाजा अटल है । इसे खुद होकर खोलने का हक बहुत पीछे छूट गया है। अब तो अकेले बैठकर प्रतीक्षा करनी है कि कब बच्चे अपने बंद कमरों को खोल कर मां की ओर नजर भर देख सके बस ।[4] तीसरी `मध्यान्तर` कहानी में एक ओर अर्थार्जन रत नारी मशीन बनती जा रही है तो दूसरी ओर पिता की गृहस्थी का भार सम्भालते हुए अपने को नहीं संभाल पाती । टाइपराइटर पर उंगलियाँ चटकाते हुए अपने विवाह के सपने देखा करती हैं, तथा भागती हुई उम्र को पकड़ रखने की कोशिश में उसका शरीर दिन पर दिन सूखता जा रहा है।[5] नारी- पुरुष दोनों के अर्थार्जन से एकाकी परिवार अन्दर-अन्दर किस प्रकार बिखरने लगता साथ ही बच्चों की उपेक्षा व रागात्मकता का अभाव होने लगता है, का चित्रण `कुहासे` कहानी में हुआ है ।

श्रीमती सरयू शर्मा की `बीच में पड़ी चाबी` कहानी में आज के व्यस्त

जीवन व पति से उपेक्षित पत्नी की विवशता का चित्रण है । स्वाति जो चाहती है, डाक्टर, दवा अथवा बच्चे के एडमीशन का काम उसके पति के माध्यम से न होकर पति के सेक्रेटरी के माध्यम से होते हैं । इससे स्वाति के मन में विद्रोह होता है वह गाड़ी चला कर स्वयं अकेली ले जाती है वहाँ एक्सीडेंट होता है । आतंकित, असहाय तथा हताश स्वाति को फिर वही सेक्रेटरी आकर सहारा देता है । स्वाति उसे गाड़ी की चाबी सौंप देती है । यहाँ 'चाबी' शब्द एक प्रतीकात्मक संकेत का काम करता है । 'शिवानी की क्यों' कहानी में छात्रावास में रहने वाली लड़कियों में वेश्या-वृत्ति की बढ़ती हुई प्रवृत्ति का वर्णन है । 'अंधाधुन्ध फैशन और आवारागर्दी के लिए शरीर के सौदे की प्रवृत्ति सन् १९७५ ई० के पहले की अनेक कहानियों में भी चित्रित हुई है जिस पर विस्तार से विचार किया जा चुका है । सुरेन्द्र सुकुमार की 'गंध बीज' कहानी तीसरे व्यक्ति के कारण टूटते परिवार की है । कहानी की नायिका भाभी है तथा बीच में आते हैं चौधरी । चौधरी भाभी के अवैतनिक अध्यापक हैं जिनकी सहायता से वे एम० ए० प्रथम श्रेणी से उत्तीर्ण करती हैं तथा उन्हें प्रवक्ता का पद भी मिल जाता है । यह सब भैया की सहमति से होता है । समाज इसे स्वीकार नहीं कर पाता । पास होने की पार्टी में लगे आक्षेपों से भैया-भाभी में टकराहट होती है और भाभी को घर छोड़ना पड़ता है । सुमति अय्यर की कहानी 'घटनाचक्र' में पुरुष की मनोवृत्ति दूसरी है । उसकी पत्नी सुन्दरी अलकनन्दा पति के मित्र सक्सेना का बेतुका एवं अश्लील आग्रह स्वीकार नहीं करती तो दूसरी ओर वह उनके बीच व्यापारिक कान्टैक्ट तोड़ देता है । तब पति अपनी पत्नी से कहता है 'एक बात कहूँ अलका---- क्या होता अगर उसे तुम चूम ही लेने देती----- मेरा मतलब है तुम इतनी मॉड पढ़ी-लिखी लड़की हो--- अब भी फिजूल के संस्कारों में बंधी हो ।[6]

इनके साथ-साथ नारी के अर्थार्जन पर भी अनेकानेक कहानियाँ लिखी गयी हैं। अचला शर्मा की `बूमरैंग` (धर्मयुग-११ जून-१९७८) कहानी में इसी के कारण उत्पन्न वैयक्तिकता से सम्बंध विच्छेद होता है तो प्रतिभा भाटिया की `अन्तर्द्वन्द्व` (मुक्ता-अगस्त प्रथम १९७८) कहानी में नौकरी छोड़ने पर घर की आर्थिक समस्या व तनाव बढ़ता है और नारी अन्तर्द्वन्द्व में फँसती जाती है। चित्रा मुद्गल की `लाक्षागृह` कहानी में सुन्नी का मंगेतर उसकी नौकरी के कारण ही उससे शादी करना चाहता है। उसका कहना है -`तुम बदशकल ही नहीं, बे-अकल भी हो। रिजाइन क्यों कर दिया ? घर में बैठकर खाना पकाओगी ? और मुझसे बिना पूछे ? इसी समय मिश्रा जी को फोन करके इस्तीफा वापस लेने की बात कह दो। शादी के बाद भी तुम्हें नौकरी करनी है।[७]

सन् १९७५ ई० से लेकर १९८१ तक की प्रमुख कहानियों की जो संक्षिप्त चर्चा पूर्ववर्ती पृष्ठों में की गयी है उससे स्पष्ट है कि साठोत्तर काल में जिंदगी के सत्य को गहराई से पकड़ने की जो चेष्टा १९७५ ई० तक की अनेक कहानियों में परिलक्षित होती है, वह इन परवर्ती कहानियों में लगभग उसी चेतना तथा उसी संकल्प के साथ वर्तमान है। वस्तु और शिल्प तथा जिन्दगी के प्रति देखने की दृष्टि अभी कुछ वही है। अत: श्री राकेश वत्स के पूर्व निर्दिष्ट वह तथ्य के एक पक्ष के सम्बंध में जो प्रश्न उठाया गया है उसका उत्तर इन कहानियों के अनुशीलन द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। इस विषय में लेखिका का नम्र अनुरोध है कि उक्त प्रतिबद्धता अभी पर्याप्त मात्रा में सीमित है, व्यापक चेतना का रूप न तो धारण कर पायी है और न उस रूप- ग्रहण के कोई स्पष्ट लक्षण ही दिखायी दे रहे हैं। अत: यह कहना अनुचित न होगा कि सक्रिय कहानी अभी एक नया नारा या नये संकल्प का सीमित प्रतिफलन मात्र है।

समग्रतया मूल्यांकन में कहा जा सकता है कि पारिवारिक जीवन के बदलते आयाम साठोत्तरी कहानियों की भाँति इन कहानियों में भी दृष्टिगोचर होते हैं । इन पर पृथक रूप से शोध कार्य करने की आवश्यकता अनुभव की जाती है । अत: लेखिका का विचार है कि भविष्य में इन विषयों पर अच्छे शोध कार्य सम्भव हो सकेंगे, क्योंकि जीवन में व्याप्त अर्थ और काम की चेतना से निर्मित होने वाले सामाजिक जीवन के ये विविध पक्ष जिस प्रकार अधीत कहानियों में पारिवारिक जीवन के संदर्भ में हमारे इस अध्ययन में दृष्टिगोचर होते हैं, उसी प्रकार अन्य सन्दर्भों में खोजे जा सकते हैं । उदाहरणार्थ- नर-नारी के सम्बंधों में अर्थ-चेतना, सामाजिक वर्ग चेतना के सन्दर्भ में वैयक्तिकता का विश्लेषण तथा अर्थगत और यौन चेतनागत कुंठाओं के विवेचन -विश्लेषण भी स्वतंत्र रूप से कहानी साहित्य के माध्यम से प्रकाश में लाये जा सकते हैं ।

--

सन्दर्भ- संकेत :

१- राजेश वत्स- अवधारणा-सक्रिय कहानी की भूमिका ।

२- सिम्मी हर्षिता- मातमी धुन- धाराशायी- कहानी संग्रह, पृष्ठ-६१

३- सूर्यबाला- दिशाहीन- दिशाहीन- मैं- कहानी संग्रह- पृष्ठ-११४

४- मालती जोशी- अस्ताचल- मध्यान्तर कहानी संग्रह- पृष्ठ-४६

५- मालती जोशी- मध्यान्तर- मध्यान्तर कहानी संग्रह ।

६- सुमति अय्यर- घटनाचक्र- साप्ताहिक हिन्दुस्तान- जुलाई १९७८

७- चित्रा मुद्गल- लाक्षागृह- धर्मयुग- २० अगस्त,१९७८